

काशी मरणान्मुक्ति : एक ईश्वरीय कृति

२० वीं सदी के महान क्रान्तिकारी पण्डित राम प्रसाद 'बिस्मिल' ने अपनी 'आत्मकथा' में लिखा है - "जो कुछ किया सो 'तैं' किया, मैं कुछ कीन्हा नाहिं! जहाँ कहीं कुछ 'मैं' किया, तुम ही थे मुझ माहिं!" 'काशी मरणान्मुक्ति' नामक उपन्यास के बारे में 'बिस्मिल' जी की यही उक्ति सटीक लगती है.

विज्ञान विषय में परास्नातक और सत्यान्वेषी प्रिय मनोज ने पर्याप्त अध्ययन मनन के उपरान्त इस कृति का सृजन किया इसमें उनकी शिष्या रश्मि का भी भरपूर सहयोग रहा. उपन्यास के रचनाकारों में लेखकद्वय का नाम भी दिया है. लेकिन इसको जन-जन तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण कार्य जिस संस्था ने किया वह कोई मामूली प्रतिष्ठान नहीं अपितु शिव ओम् साईं प्रकाशन, इन्दौर है. इसने सोने पर सुहागे का कार्य किया है.

विज्ञान में स्नातकोत्तर शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात कृतिकार मनोज ने छात्रों को अर्थशास्त्र पढ़ाने के साथ उन्हें अपनी संपूर्ण ऊर्जा को सृजनात्मकता की ओर प्रेषित करने को प्रेरित किया. उनका दृढ़ विश्वास था कि देश का युवा वर्ग ही समाज में आमूल परिवर्तन लाने की क्षमता रखता है. कमोवेश मेरा भी यही मानना है. देखा जाये तो उनका यही विश्वास सम्पर्क में आने वाले शिष्यों का भी आत्मविश्वास बन गया. ऐसा करते-करते कब वे गुरु के रूप में उनसे अभिन्न रूप से जुड़ गये उन्हें इसका आभास ही न हुआ. शिरडी वाले साईं बाबा को अपना गुरु मानने वाले मनोज जी का विश्वास है कि जीवन-पथ पर 'बाबा' ने सदैव उनका मार्गदर्शन किया. इसका उल्लेख उन्होंने उपन्यास की भूमिका में किया भी है.

पूरे ६९ अध्याय और ५०० से अधिक पृष्ठों में रचित यह उपन्यास निश्चित रूप से मनोज जी की नहीं किसी "और" की ही रचना है वे तो मात्र इसका एक माध्यम बने हैं. मैं यह बात बड़ी गहराई से कह रहा हूँ, अन्यथा न लें. काशी में मरने से मुक्ति मिलती है यह बात कबीर को भी पता थी फिर उन्होंने मगहर में मरना क्यों पसन्द किया. तुलसीदास जी ने "रामचरितमानस" लिखना तब प्रारम्भ किया जब वे ७६ वर्ष की आयु पार कर चुके थे. उसके बाद भी वे ५० वर्ष तक जीवित रहे रामलीला के माध्यम से रामकथा को जन-जन तक पहुंचाते रहे, यह कोई साधारण बात नहीं.

काशी मरणान्मुक्ति के लेखक तो अभी युवा हैं उदयमी भी हैं अन्यथा विज्ञान से इतर विषय 'अर्थशास्त्र' को अपनी आजीविका का साधन न बनाते, उनके शिष्यों की संख्या भी कम नहीं, मैनेजमेंट गुरु तो वे हैं ही फिर भी "याद रख मैं तेरा गुरु नहीं!" वाक्य प्रत्येक अध्याय के अन्त में दोहराते हैं, मैंने आज तक

किसी को अपना गुरु नहीं बनाया किन्तु मैंने यह अनुभव अवश्य किया किया कि मेरा असली गुरु तो मेरे अन्दर बैठा हुआ है, वह जब मेरे अन्दर से निकल कर बाहर आ जायेगा तो मैं शिव नहीं शव बन जाऊँगा, फिर मेरे इस भौतिक शरीर का भी कोई मूल्य नहीं रह जायेगा, कमोवेश यही काशी मरणान्मुक्ति के

महापात्र "महा" का भी मानना है जो स्वपच (चाण्डाल) होने के साथ श्मशान वैराग्य को प्राप्त हो चुका है.

उपन्यास की भाषा तत्सम शब्दावली सम्पृक्त है किन्तु बोझिल नहीं सरल होने के साथ-साथ पाठक को आकृष्ट भी करती है, मुंशी प्रेमचन्द प्रणीत पत्रिका हंस के चित्रों ने इसमें चार चॉद लगा दिये हैं रश्मि की कलात्मक दृष्टि इसके लिये श्लाघनीय है, कुल मिलाकर यह कृति उपन्यास विधा में अपना स्थान स्वयं ही निर्धारित करेगी ठीक उसी प्रकार जैसे सन १९७८ में मेरे द्वारा एक बार की सिटिंग में लिख गयी कृति "ललिता के आँसू" का मूल्यांकन हुआ और उसे Top 100 Epics of the World में 86वाँ स्थान दिया गया, विश्व की सभी भाषाओं में हिन्दी के तीन काव्यों को ही स्थान मिला तुलसीकृत "रामचरितमानस" को 46 वाँ रामधारीसिंह दिनकर कृत "कुरुक्षेत्र" को 74 वाँ तथा Lalita ke Aansoo को 86 वाँ.

मेरी ओर से मनोज व रश्मि दोनों को ही कोटिश: आशीर्वाद व बधाइयाँ! "चरैवेति! चरैवेति!!" लिखते रहो, लिखते रहो, 'बिस्मिल' जी के ही इन शब्दों से अपनी लेखनी को विराम देता हूँ - "हमारे बाद भी आने को मर्द-मैदाँ हैं, हैं सरफ़रोश बहुत हिन्द में कमी क्या है?"

मदनलाल वर्मा 'क्रान्त'

"आस्था" ई-५५, बीटावन, बिस्मिल विहार, ग्रेटर नोएडा २०१३१० (भारत)